International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 21-12-2020; Accepted: 09-01-2021; Published: 11-02-2021
www.hindijournal.com
Volume 7; Issue 1; 2021; Page No. 44-45

वैदिक साहित्य में संयुक्त परिवार की अवधारणा एवं वर्तमान की आवश्यकता

कु. राखी वशिष्ठ
Department of Language, Jiwaji University, Gwalior, Madhya Pradesh, India

सारांश
प्रस्तुत शोध–पत्र में ''वैदिक साहित्य में संयुक्त परिवार की अवधारणा एवं वर्तमान की आवश्यकता'' का विवरण प्रस्तुत किया गया है। परिवार सामाजिक संरचना की मूलभूत इकाई है, वर्तमान समय में संयुक्त परिवार के पारम्परिक रूप में काफी परिवर्तन आया है। व्यक्तिगत सोच और स्वतंत्र जीवन जीने की चाहत ने पारिवारिक सम्बन्धों के महत्व को कम कर दिया है। बुजुर्ग पीढ़ी और युवा पीढ़ी की सोच में बहुत अन्तराल आ गया है। जो पारिवारिक सम्बन्धों में पैदा हुए तनाव का एक बहुत बड़ा कारण है, जिसके कारण संयुक्त परिवार बिखरते जा रहे हैं। पारिवारिक भावना कम होती जा रही है। वैदिक साहित्य मावव जीवन का मार्गदर्शन करता है। वेद वह ईश्वरीय ज्ञान है जो सृष्टि के प्रारम्भ से मानव कल्याण के लिए ऋषि मुनियों के माध्यम से प्रदान किया गया है, वेद ही विश्वशान्ति और विश्व कल्याण के प्रथम उद्घोषक है। इस शोध–पत्र में वैदिक साहित्य में पारिवारिक भावना को स्पष्ट किया गया है।

मूलशब्द: वैदिक साहित्य, संयुक्त परिवार की अवधारणा, वर्तमान की आवश्यकता

प्रस्तावना
वेद विश्व का प्राचीनतम वाङ्मय है। भारत की सनातन मान्यताओं के अनुसार वेद अपौरुषेय अथवा सर्वज्ञ स्वयं भगवान की लोकहिताय रचना है। शास्त्रों में सम्पूर्ण वेद का धर्म के मूल रूप में आख्यान किया गया है– ''वेदोऽखिलोधर्ममूलम्।'' उदयनाचार्य ने सम्पूर्ण वेद का परमेश्वर का निरूपक माना है। उनका कथन है–

कृत्स्न एव हि वेदोऽयं परमेश्वरगोचरः।

ऐसे शब्द प्रमाण, वेद की समस्त शिक्षाएँ, सिद्धान्त और अवधारणाएँ सार्वभौम हैं। वेद भगवान की स्पष्ट आज्ञा है– 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनो। ऐसी गरिमामयी वैदिक संस्कृति का ऋग्वेदकालीन समाज सुसंगठित था, जिसका प्रमाण हमें आदर्श वैदिक शिक्षाओं से मिलता है– यथा– ''सं गच्छध्वं सं वद्ध्वम्''[1] अर्थात् मिलकर लो और मिलकर बोलो। ''स्वस्थि पन्थामनुचरेम्''[2] अर्थात् हम कल्याण–मार्ग के पथिक हों।''इन शुभाशंकाओं का भावनात्मक अर्थ यह संकेत करता है कि वैदिक काल में परिवार का स्वरूप संगठित था, जिसके कल्याण और शुभ के लिए सर्वत्र मंगलकामनाएँ की गई हैं।
व्यक्ति परिवार की प्रथम इकाई है जिसे आदर्श बनने के लिए वेदमंत्रों में वेद भगवान से संरक्षण मांगा गया है–
ऋचा वरेण्यं अवः यामि[3] अर्थात् वेदमन्त्रों से मैं श्रेष्ठ संरक्षण माँगता हूँ। ऐसा सार्वभौम कल्याण का भाव वेद में सर्वत्र देखने को मिलता है।
वैदिक संस्कृति में सामाजिक संगठन की मूलभूत इकाई कुल थी, जिसमें एक पिता या ज्येष्ठ भ्राता के, जो कुलप् कहलाता था।[4] अनुशासन को मानते हुए कई सदस्य एक ही गृह में[5] एक साथ रहते थे। गृह न केवल सम्पूर्ण अविभक्त परिवार के रहने के लिए पर्याप्त होता था, किन्तु उस कुल के गोधन[6] और भेड़ बकरियों के लिए भी[7] 'जो दिन में ब्रज या गोचर–भूमि में चरकर रात को घर लौटते थे[8] एक घर में कई शालाएँ होती थीं और वे सब बाहर से बन्द की जा सकती थीं।
उक्त सभी सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि ऋग्वेदीय सभ्यता में संयुक्त परिवार का महत्त्व था और संगठन को शक्ति एवं प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता था। स्मृति काल में भी आचार्य मनु ने नारी के महत्व को प्रतिपादित किया है ''यत्र नार्यः पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'' इसी के अनुरूप गृहिणी के लिए गृह का पर्याय प्रदान कर उसे गृह की ही संज्ञा प्रदान कर दी है– ''गृहिणी गृहमुच्यते'' ठीक है। धीरे–धीरे परिवेश में परिवर्तन हुआ और भारत में संगठित परिवारों का धीरे–धीरे विघटन प्रारम्भ हुआ।
वर्तमान में संयुक्त परिवार का स्थान एकांकी परिवार ने ले लिया है। इसका मुख्य कारण है– वैदिक संस्कृति से विमुख होकर पाश्चात्य संस्कृति की ओर उन्मुख होगा। क्योंकि हमारी संस्कृति के नीति सूत्र मातृदेवोभव! पितृ देवो! अतिथिदेवोभव! की गरिमामयी परम्परा ने हमारी भारतीय संस्कृति को विश्व में अपनी एक विशिष्टता प्रदान की और भारतीय संयुक्त परिवारीय परम्परा कोई व्यष्टि रूप में नहीं बल्कि वह समष्टि रूप में विद्यमान है, जिसका उद्घोष हमारे नीति ग्रन्थों में ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' के रूप में हो रहा है।
ऐसी गरिमामयी परम्परा को वर्तमान परिवेश में स्थायित्व देने के लिए आवश्यकता थी ''प्रेम देवो भव! जैसी संजीवनी की, किन्तु आज पाश्चात्य संस्कृति की वैयक्तिक स्वार्थलोलुपता ने इसे विकृत कर दिया है। ठीक है वर्तमान समय में रोजगार की समस्या है। नवयुवकों को रोजगार हेतु अन्यत्र जाना पड़ता है, आर्थिक विषमाताओं के चलते हुए नारियों को रोजगारोन्मुख होना आवश्यक हो गया है, किन्तु हमारा जो मूल भाव है उसे तो हम अक्षुण्ण बनाए रखें। प्राचीन काल में भी व्यापार एवं रोजगार हेतु नागरिक वर्ष में आठ मास बाहर रहकर अपनी आजीविका कमाने बाहर रहते थे और मात्र ऋतु परिवर्तन का संकेत मेधदूत के अनुसार ''आषाढस्य प्रथम दिवसे'' के अनुसार अपने–अपने घर लौटने लगते थे अपनी पारिवारिक व्यवस्था हेतु।
संयुक्त परिवार के विघटन के वर्तमान में मुख्य कारण हैं– नवयुवकों का रोजगारोन्मुख होकर अन्यत्र पलयान, वैयक्तिक लाभ की प्रवृत्ति, जिसमें दिनकर जी की यह पंक्ति पूर्ण सार्थक है–

इस वैयक्तिक भोगवाद से फूटी विष की धारा।
तड़प रहा जिसमें पड़कर मानव समाज ये सारा।।

इसका समाधान केवल यही है कि हम मतभेद करें ठीक करें, लेकिन मनभेद न हो तो विघटन की सम्भावनाएँ कम हो सकती हैं, परिवार वर्तमान में उपयोग के लिए नहीं उपभोग के लिए

बनकर रहा गया है। रिश्तों का महत्त्व कम हो गया है लगता है सभी गरिमापूर्ण रिश्तों में विकृति आ गई है, हमारी संस्कृति का सूत्र ''मातृदेवो भव' आदि की विकृति ''माता भग'' ''पिता भग'' के रूप में विकृत हो गए हैं। इसका मुख्य कारण है कि नाते, रिश्ते, सामाजिक प्रतिष्ठा का मानदण्ड न होकर व्यक्तिगत उपलब्धियाँ ही होकर रह गए हैं। हमने परम्परावादी विचार हटाकर विकासवादी परिवर्तन में विश्वास किया है। श्री बख्शी जी ने अपने निबन्ध ''क्या लिखूँ'' में लिखा है कि ''तरुण क्रान्ति के समर्थक हैं वे भविष्य को वर्तमान में देखना चाहते हैं। उन्हें अपनी प्राचीन धरोहर को संरिक्षत रखने और उसका संवर्धन करने में विश्वास नहीं है।'''

''परिवार मनुष्य की प्रथम पाठशाला है।'' ऐसे नीति वाक्य तभी सार्थक हो सकते हैं जब हम परिवार और पाठशाला की बुनियादी विशेषताओं को समझें। व्यष्टि से समष्टि की ओर जाएँ। प्राय इतिहास ग्रन्थों का अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि संयुक्त परिवार से ही परिवार परिभाषित होता है।

उत्तर भारत की दश समय लगभग 650–325 ई.पू. के ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात किया है– ''सन्निवेश की इकाई गृह था, जिसमें कुल का निवास होता था। कुल अच्छी खासी इकाई थी। वह पिता, माता, सन्तान और उनके पितामह, पुत्रवधु और पौत्री के संयुक्त परिवार की संज्ञा थी।[9]

किं बहुना, संयुक्त परिवार के वर्तमान परिवेश को सुसंगठित करने, सौहार्द्र और सद्भाव स्थापित करने के लिए उपयोगिता है, जिसके महत्व का डिमडिमघोष वैदिक काल से होता रहा है। मैं चाहूँगी, कि इसकी महत्ता को हम समझें और ''सह नाववतु, सहनौभुनक्तु सह वीर्यं करवावह है, तेजस्विनामधीमस्तु'' की संकल्पना को साकार करें। ''संयुक्त परिवार'' की संकल्पना को हम साकार करेंगे तभी हम अमृतत्त्व को प्राप्त कर यही समंगल कामना कर सकेंगे–

जीवेम शरदः शतम्, पश्येम शरदः शतम्
श्रुणुयाम शरदः शतम्।।
सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सवर्ये भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद दुःख भाग्भवेत्।।

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद 10/191/2
2. ऋग्वेद 5/51/15
3. सामवेद : 48
4. ऋग्वेद 10/179/2
5. ऋग्वेद 3/53/6, 2/42/3
6. ऋग्वेद 7/56/16
7. ऋग्वेद 10/106/5
8. ऋग्वेद 2/38/8
9. हिन्दू सभ्यताः डॉ. आर.के. मुखर्जी, पृ. 291